बलिदानी इतिहास- डा० अजय छरंगू

(लेखक ''पनून कश्मीर'' संस्था के राजनैतिक मामलों की कमेटी के अध्यक्ष हैं।)

यह लेख 1999 में खालसा सृजना के त्रिशताब्दी समारोह के अवसर पर अंग्रेजी में लिखा गया था।

अनुवादक - जगजीवन जोत सिंह आनन्द

इस वर्ष सम्पूर्ण राष्ट्र बैसाखी पर खालसा सृजना का त्रिशताब्दी समारोह मना रहा है। इस दिन दशम् गुरू गोविन्द सिंह जी द्वारा संत-सिपाही रूप में खालसा पंथ की स्थापना की गयी थी और एक नये भ्रातत्व भाव का संचार राष्ट्रवाद रूप में हुआ। जिसने हाथों में कृपाणों को धारण किया और असहिष्णु औरंगजेब के नेतृत्व में मुगलों की धर्म सम्बन्धी नीतियों का मुकाबला किया। गुरू गोविन्द सिंह जी का मत था कि वे ताकतें जो कि असहिष्णु व क्रूर थी, उनका मुकाबला आस्था और शौर्य के बल पर किया जा सकता है।

देश भक्तिपूर्ण भूमिका

देशभक्ति के विचार और बलिदानी जीवन दर्शन, जो कि गुरू गोविन्द सिंह जी द्वारा प्रतिपादित किया गया, उसमें एक विराट प्रतिरोधी व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। सिख सदैव देश की स्वतंत्रता के संघर्ष में अग्रसर की भूमिका में रहे हैं और कृपाण जैसी यह भुजा 1947 में भी भारत की रक्षा में काम आयी। जब ब्रिटिश हुकुमत आयी, तो सिखों को अपने हथियार रखने पड़े। लेकिन उन्होने ही सबसे पहले अंग्रेजी शासन के विरूद्ध विद्रोह का बिगुल बजाया।

ब्रिटिश विरोधी दो आंदोलनों, जो कि 1920 में हुए थे, वे इतिहास में गदर आंदोलन के कांड ''कामागाटा मारू'' और गुरूद्वारा सुधार आंदोलन के रूप में प्रसिद्ध हुए। यह दोनों आंदोलन सिख इतिहास में विशिष्ट स्थान रखते हैं, जिसमें साम्राज्यवादी राजशाही की नींव हिला दी। इन संघर्षों में 400 से अधिक सिखों ने अपने प्राण त्यागे और लगभग 200 के करीब लापता हुए। इन आन्दोलनों में लगभग 30,000 सिख गिरफ्तार हुए। उन देशभक्तों ने जिन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए जान दी थी, उन 2175 देशभक्तों में 1557 सिख थे। साम्राज्यवादियों के विरोध में होने वाले संघषों में 2446 भारतीयों को कालापानी की सजा दी गयी, जिनमें से 2147 सिख थे। 127 देशभक्तों को फांसी की सजा दी गयी जिनमें 92 सिख थे।

कश्मीरी पंडित और सिख गुरू

खालसा सृजना के त्रिशताब्दी समारोह विस्थापित कश्मीरी पण्डित समाज के लिए अवसर है कि वे स्वयं को सिख गुरूओं के विचारों के प्रति स्वयं को समर्पित करें और इस भावना को प्रकट भी करें कि उनकी आस्था का रक्षण सिख गुरूओं द्वारा हुआ। विश्व में वे सामाजिक समूह ही वास्तव में जीवित रहते हैं, जो अपने राष्ट्र के ध र्मरक्षकों को विस्मृत न करें।

सन 1669 में, क्रूर मुगल शासक औरंगजेब ने मजहब के आधार पर, तब्लीगी महत्वकांक्षाओं के कारण हिन्दू जनता को प्रताड़ित करना आरम्भ कर दिया था। उसके तंत्र ने बड़े पैमाने पर हिन्दूजनों को हतोत्साहित करना प्रारम्भ कर दिया था। लोग भयभीत थे। सभी घटनाओं को देखते हुए गुरू तेग बहादुर जी ने भारतीयों के गिरते हुए मनोबल को नयी ऊर्जा दी। सन 1673 से लेकर 1674 तक गुरू तेग बहादुर जी ने मालवा और बांगर क्षेत्रों में सघन सामाजिक कार्य खड़ा किया। जिसने सामान्य भारतीय जनों को उत्प्रेरित किया। इससे वे इस बात के लिए अभ्यस्त होने लगे और सभी किस्म की विपरीत परिस्थितियों पर मुकाबला कर पाये। यह अपने आप में मूक रहकर किया जाने वाला विरोध था। जिसने औरंगजेब की प्रताड़ित करने वाली आक्रामक नीति का सामना किया। हजारों लोग गुरू तेग बहादुर जी के पवित्र दर्शनों के लिए आते और उनके संदेशों से प्रभावित होते। काल की विपरीत परिस्थितियों में आशा का सूर्यमंडल बनकर वे उभर रहे थे। ''न किसी को भयभीत करो और न ही किसी का भय ही मानो'' का उदघोष लोगों को प्रभावित कर रहा है। गुरू तेग बहादुर जी के रूप में उत्तर भारत के हिन्दुओं को स्वत: ही एक खेवनहार मिल गया। वे भारतीय सभ्यता के प्रतिरोधक-शक्तिपुंज के रूप में स्थापित हो चुके

थे। भारतीय जनों के जागरण के अभियानों के दौरों की समाप्ति पर गुरू जी अपने केन्द्र ''चक ननकी'' अर्थात श्री आनन्दपुर साहिब आ गये थे।

25 मई 1675 को 16 कश्मीर के ब्राहमणों के मुखिया पंडित कृपा राम दत्त जी के नेतृत्व में आनन्दपुर साहिब सहायता के लिए पहुंचे थे। कश्मीर के मुगल प्रशासक इफ्तिखार खान ने उन्हें आदेषित किया था कि या तो वे सब धर्मान्तरित हो जायें अथवा मृत्यू का सामना करें। वह गुरूद्वारा मंजी साहिब का स्थान ही था जहां गुरू जी ने उनका दारूण वृतान्त सुना। गुरू तेग बहादुर जी सुनने के समय पूरी तरह शांत थे। उनका मन उस सामूहिक विनती से प्रभावित हो रहा था। कुछ देर चिन्तन के पश्चात गुरू जी ने एक महान ऐतिहासिक उद्घोषणा की-''वे उनकी धार्मिक आस्थाओं के रक्षण हेतु निज जीवन का त्याग करने को भी तैयार हैं।'' गुरू जी इन मुश्किल सामाजिक परिस्थितियों को, जो कि औरंगजेब की मजहबी हत्याओं से उत्पन्न हुई थी, सूक्ष्मता से देख रहे थे। उनका निश्चित मत था कि केवल और केवल स्व:बलिदान से ही राजनीति की धारा को विपरीत दिशा में मोड़ा जा सकता है।

निश्चित ही, यह बात उत्सुकता पैदा करती है कि क्यों कश्मीरी पण्डित केवल गुरू तेग बहादुर जी के पास मध्यस्थता के लिए गये थे जबकि मजहबी हत्याओं का प्रभाव देश के लगभग सभी भागों पर एक सा पड़ा था, लेकिन केवल कश्मीरी पण्डितों के धर्मान्तरण के प्रश्न पर ही गुरू जी ने महान बलिदान दिया। भारतीय सभ्यता को विषय मानकर अध्ययन करने वाले गम्भीर विद्यार्थियों के लिए यह विषय उत्सुकता जगाता ही है।

यद्यपि यह मानना होगा कि कश्मीरी पण्डितों द्वारा गुरू तेग बहादुर जी के समक्ष उपस्थित होना और फिर उनका बलिदान के दूरगामी परिणाम हुए। पण्डित कृपा राम के आनन्दपुर साहिब जाने के अभियान से काफी समय पूर्व कश्मीरी पण्डित सामाजिक समूह के आध्यात्मिक नेतृत्व का सिख गुरूओं से करीबी सम्पर्क व सम्बन्ध रहा है। आध्यात्मिक विचारों के आदान प्रदान के गवाह थे वे पूर्व के सम्बन्ध। पण्डित कृपा राम ही सिख गुरूओं के दरबार में अजनबी नहीं थे। वे पण्डित ब्रहमदास के वंशज थे, जो कि गुरू नानक देव जी से मतान में मिले थे। कृपा राम नौवें गुरू के करीबी परीचित थे और उन्होंने कालान्तर में तरूण गोबिन्द राय को संस्कृत की शिक्षा भी दी थी। जहांगीर के जमाने में छठे गुरू हर गोबिन्द जी श्रीनगर आये थे और उनकी भेंट कश्मीरी साध्वी माता भाग भरी, जो कि रैनावाड़ी में रहती थी, से हुई। यह बहुत महत्वपूर्ण है कि सिख धार्मिक मान्यताओं ने भी साध्वी माता भाग भरी और छठे गुरू जी के आध्यात्मिक वार्तालापों को संजो कर रखा है। पण्डित परंपराओं के अनुसार माता भाग भरी आध्यात्मिक आचरण की दृष्टि से एक तुलनात्मक मानदण्ड के रूप में प्रतिष्ठित है। रोजमर्रा में भी पण्डितों द्वारा कहा जाता है ''ज़ान चक भाग्य भाद'' इसका अनुवाद है कि ''ऐसे जैसे तुम भाग भरी हो''। कश्मीरी पण्डित क्यों कर गुरू तेग बहादुर जी तक पहुंचे-इसे इस तरह समझा जा सकता है कि वे एक ऐसे आध्यात्मिक केन्द्र की खोज में थे, जो कि प्रतिरोध का प्रगतिकरण कर सके, जो इस बात को माने कि राष्ट्र के समक्ष सभ्यता की चुनौती है।

सिख गुरू के समक्ष प्रार्थना से वे यह संदेश भी पूरे देशवासियों को देना चाहते थे कि यही एकमात्र साख वाली सामर्थ्यवान संस्था है, जो कि इस महान अभियान को अपने कंधे पर ढो सकती है। दूसरा, कश्मीरी पण्डितों का प्राकृतिक रूप में सिख गुरूओं से सानिध्यता वे सिख गुरूओं की जीवन दर्शन से प्रभावित थे और उनके साथ नियमित सम्पर्क में थे (गुरू नानक देव जी के समय से)। कश्मीरी हिन्दू समाज में जाति की संकीर्ण भावना का त्याग कर दिया था, जो कि सामान्यत: भारतीय समाज की कमजोरी है। उस क्षेत्र पर बहुत समय तक बौद्ध मतावलम्बियों का एवं अद्वैतवादी शैवों का प्रभाव रहा है। इसी के चलते कश्मीर में सिख गुरूओं के प्रभाव के कारण जातिविहीन समाज का निर्माण हो सका। यही कारण था कि कश्मीरी पण्डितों ने गुरू की दिषा की ओर देखा।

गुरू तेग बहादुर जी ने कश्मीर की सभ्यता के केन्द्र के रूप में रक्षण को महत्वपूर्ण माना। यदि यह केन्द्र धाराशाही होता है तो शेष भारत के सभ्यता सम्बन्धी संघर्षों पर इसका जबरदस्त प्रभाव पड़ेगा-ऐसा गुरू तेग बहादुर जी का अभिमत था। कश्मीरी हिन्दूओं द्वारा भारत के हिन्दुओं को बौद्धिक एवं आध्यात्मिक नेतृत्व की प्राप्ति होती थी। जब औरंगजेब ने धर्मान्तरण के लिए बनारस के ब्राह्मणों से सम्पर्क किया तो उन्होने कहा कि वे तभी निर्णय

ले सकते हैं, जब कश्मीरी ब्राह्मणों को यह मंजूर हो। खालसा सृजना से पूर्व की दो महत्वपूर्ण घटनायें थी–कश्मीरी पण्डितों द्वारा मध्यस्थता के लिए गुरू तेग बहादुर जी के पास जाना और गुरू तेग बहादुर जी का महान बलिदान।

इसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध सिख विद्वान फौजा सिंह लिखते हैं–''कश्मीरी पण्डितों द्वारा सहायता के लिए प्रार्थना करने की घटना ने गुरू को निर्णायक कदम उठाने के लिए समय ही नहीं दिया, बल्कि गुरू जी ने धर्मान्तरण के विषय को सदैव के लिए अन्तिम रूप भी दिया। लेकिन जिस प्रकार से घटना चक्र ने चेहरा इख्तियार किया, वे कुछ प्रताड़ित ब्राह्मणों की पीड़ा की पृष्ठभूमि में उसके गुप्त, विलुप्त, गहर–गम्भीर बहुत महान व महत्वपूर्ण था''। गुरू गोबिन्द सिंह जी ने अपनी रचना ''बिचित्तर नाटक'' में अपने पिता के बलिदान के सम्बन्ध में लिखा है कि – उन्होने उनके तिलक और जनेऊ की रक्षा की।

कलयुग में बलिदान की एक महान घटना। पवित्र की रक्षा में उन्होंने सब प्रकार की पीड़ाओं को सहन किया। उन्होंने शीश दिया, परन्तु पीड़ा के स्वरों का उच्चारण नहीं किया। धर्म की रक्षा के लिए उन्होंने महान कार्य किया। उन्होंने शीष दिया, परन्तु अपने आदर्ष नहीं। गुरू तेग बहादुर जी के बलिदान ने उन्हें पण्डित कृपा राम और उसके साथियों के लिए उनकी आस्था को बचाने वाला मसीहा बना दिया था। इसके बाद वे सभी आनन्दपुर साहिब में ही बस गये, कालान्तर में, पण्डित कृपा राम द्वारा गुरू गोबिन्द सिंह जी से खण्डे की पाहुल ग्रहण की गयी। वह मुगल सेना के साथ चमकौर के युद्ध में गुरू गोबिन्द सिंह जी के दोनों सुपुत्रों के साथ मिलकर लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए। बाद में, एक अन्य मुक्तसर के युद्ध में एक कश्मीरी पण्डित–केशव भट्ट, जो कि खालसा हो चुका था, उन ऐतिहासिक चालीस मुक्तों में शामिल था। तब उसका नाम केशो सिंह हो चुका था। इन सभी घटनाओं का ब्यौरा ''भट्ट बहियो'' (पण्डितों के हिसाब रखने की पोथी) में दर्ज है।●